चतुर्थ अध्याय

"विवेच्य उपन्यासों में चरित्र चित्रण की प्रवृत्तियाँ : तुलनात्मक मूल्यांकन"

चतुर्थ अध्याय

''विवेच्य उपन्यासों में चरित्र-चित्रण की प्रवृत्तियाँ : तुलनात्मक मूल्यांकन''

❑ प्रास्ताविक :

उपन्यास के चरित्रों का चित्रण जितना स्पष्ट, गहरा और विकासपूर्ण होगा उतना ही पढ़ने वालों पर उसका असर पड़ेगा किंतु यह लेखक की रचनाशक्ति पर निर्भर है। वास्तव में पात्र की परिस्थितियाँ और उसके चरित्र में अनोन्याश्रयी संबंध होता है। कभी घटनाएँ उसके चरित्र को प्रभावित कर उसकी दिशा को मोड़ देती हैं और कभी उसका चरित्र घटनाओं को उभारता और उनको निश्चित दिशा प्रदान करता है। ''विभिन्न परिस्थितियों में पात्र की भिन्न-भिन्न क्रिया-प्रतिक्रियाएँ हो सकती हैं, समान परिस्थितियों में भी उसकी प्रतिक्रियाएँ भिन्न-भिन्न हो सकती हैं पर उन विभिन्न क्रिया-प्रतिक्रियाओं के प्रेरकों में एकसूत्रता लाकर उपन्यासकार को पात्रों के चरित्र-विकास में संगति लानी होती है। सारांश यह कि उपन्यासकार को अपने पात्रों का पूर्णज्ञाता बनना होगा, उनके संबंध में उसे पूरी-पूरी जानकारी रखनी होगी और उस जानकारी को पाठकों पर प्रकट करते हुए उन्हें प्रतीति करा देनी होगी कि भले ही वह समय और स्थान के अभाव में अपने पात्रों की पूर्ण व्याख्या न कर सका हो, पर उसके पात्र पहेली नहीं हैं।''[1] स्पष्ट है कि उपन्यासों में चरित्रों का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान होता है।

4.1 ऐतिहासिकता का निर्वाह :

ऐतिहासिकता का निर्वाह जिन उपन्यासों में होता है वहाँ सर्वप्रथम महत्त्व ऐतिहासिक यथार्थ के अवलंबन में है। विज्ञान की प्रगति के आलोक में आज प्रत्येक बात में कार्य-कारण-संगति पर बल दिया जाता है। अतीत और वर्तमान में विभाजक रेखा अंकित नहीं की जा सकती क्योंकि प्रत्येक वर्तमान क्षण विगत होता जाता है। वस्तुत: ये दोनों परस्पर कारण कार्य के रिश्ते से बंधे हैं और हम जानते हैं कि कारण एवं कार्य एक ही

---

1. डॉ. ऋता बावा : उपन्यास के सिद्धांतों का विकास और विवेचन, पृष्ठ - 80

तथ्य के युग्म पार्श्व है। आज की घटनाएँ कल या उससे पहले सप्ताह या मास की घटनाओं का युक्ति युक्त परिणाम है। परंतु यह भी कैसे कहा जा सकता है कि वे सौ वर्षों की घटनाओं का तर्क-संगत परिणाम नहीं? प्रत्येक पुनर्विकास अपने पूर्ववर्ती विकास का संशोधित स्वरूप है या अगला सोपान-प्रत्येक युग की दुर्बलता या शक्तिमत्ता अगले युग में लक्षित की जा सकती है। ऐसी अवस्था में वर्तमान जीवन की समस्याओं में हमारी पैठ उतनी ही गहरी होगी, जितना हमारा इतिहास का अध्ययन प्रगाढ़ होगा। ऐसे उपन्यासों में एक ओर घटनाओं की बाहरी राजनीति तथा स्थूल श्रृंखला के अंत: स्त्रोतों सामाजिक, सांस्कृतिक तथा वैयक्तिक प्रेरणाओं को खोज निकालते हैं और दूसरी ओर पात्रों के अंतर्जीवन को प्रत्यक्ष करते हैं। इससे एक ओर उस युग-विशेष के समूचे यथार्थ को समझने में सहायता मिलती है, दूसरी ओर अपनी कार्य-प्रेरणाओं सहित चिरंतन मनुष्य को समझने में। इस प्रकार ऐसे उपन्यास में मनुष्य के द्वंद्व-समन्वय के भव्य नाटक का साक्षात्कार जैसे विज्ञान और कला या इतिहास और साहित्य दोनों की शक्तियों का संगम होता है।

'सूत्रधार' तथा 'महात्मा' चरित्रप्रधान उपन्यास हैं जिसमें ऐतिहासिकता का निर्वाह हमें होता है। प्रस्तुत उपन्यासों में हम उस युग के पात्र के हृदयस्पंदनों को सुन लेते हैं। उसके प्राणों के आंतरिक अभिप्राय को पकड़ लेते हैं। उपन्यास में उस समाज की द्वंद्वात्मक गति और समन्वय प्रयासों का उचित चित्रण देखने को मिलता है। उस समय के देशकाल का यथार्थ चित्रण हुआ है। साथ में कालखण्ड की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक परिवेश को बहुत यथार्थता के साथ यहाँ प्रस्तुत किया है।

'सूत्रधार' में हमें उन्नीसवीं सदी के अंतिम दो दशकों से लेकर बीसवीं शती के सातवें दशक तक का वर्णन मिलता है। उपन्यास में स्वाधीनता आंदोलन, अंग्रेजों का शासन, मनुष्य की अन्याय-अत्याचार से टक्कर लेने की कोशिश, गली-सड़ी रूढ़ियों का किया विरोध, नाना द्वंद्व-भेदों, परंपराओं, संस्कारों, वेशभूषा, केशभूषा से लेकर खान-पान पद्धतियों, विवाह-जन्मविधि के संस्कारों का अंकन हुआ है।

'सूत्रधार' में 1914 के भयानक सूखे और अकाल का वर्णन आया है।

सामाजिक वातावरण का वर्णन है। प्रथम विश्वयुद्ध के कारण उसका परिणाम किस प्रकार देश के आम व्यक्ति पर भी पड़ा इसका वर्णन संजीव ने अपने उपन्यास में किया है।

''किसानों से लगान की वसूली बढ़ गई थी। एक तरफ अकाल की मार, दूसरी ओर लड़ाई के चलते लगान की। दो पाटों में पीसकर किसान तबाह। लोग दाने-दाने को मुहताज हो गए।''[1]

उपन्यास में बिहार के साथ-साथ बंगाल, कलकत्ता, आसाम आदि का भी चित्रण आया है। कलकत्ते जैसे शहर में उस समय में अंग्रेजों की संख्या अधिक थी और अधिकार भी। अंग्रेजों की घृणाभरी नीति, उनके अत्याचार आदि का वर्णन आया है। साथ में अंग्रेजों ने भारत में जो विकास किया; जैसे रेल, टेलिफोन, तार आदि की व्यवस्था, आदि का वर्णन भी यहाँ ऐतिहासिकता के अनुसार उपलब्ध होता है। उपन्यास में स्वाधीनता आंदोलन के समय घटित 'चौरा-चौरा' प्रसंग, जालियनवाला बाग हत्याकांड आदि प्रसंगों का उल्लेख हुआ है, जो समय के अनुरूप है।

'सूत्रधार' में संजीव ने 'मीरगंज' का वर्णन किया है, जहाँ पर दुनियाबाई - सुन्दरीबाई जैसी तवायफें रहती थीं। तत्कालीन समय में इस प्रकार से ईरान से भारत में ये कलाकार आ जातें और यहीं पर बस जातें। लखनऊ ऐसा शहर जहाँ के नवाब तवायफों की कला, उनका सौंदर्य इसमें किस कदर डूब जाते थे इसका वास्तविक वर्णन यहाँ पर हुआ है, जो ऐतिहासिकता के अनुरूप है। भारतीय समाज में त्यौहारों का अपना महत्त्व है। उपन्यास में दीवाली, होली आदि का उचित वर्णन आया है। साथ में किस प्रकार की रस्में यहाँ निभाई जाती इसका भी वर्णन है।

उपन्यास में तत्कालीन समाज के साथ भोजपुर की आबादी का भी वर्णन आया है। जैसे - ''अब देखिए 1357 में सिपाही विद्रोह है और सन 1880 में लार्ड डफरिन बनारस में राजघाट पर स्कुल बनवाते हैं और 1885 में काँग्रेस की स्थापना होती है। अठारह सौ नब्बे तक भोजपुर नगर के बारे में कहा जाता था कि - बावन गली तिरपन बाजार, दिया जरे छप्पन हजार। माने आबादी छप्पन हजार की।''[2]

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 34
2. वही, पृष्ठ - 130

साथ में अनेक स्थलों पर लेखक ने ऐतिहासिकता का निर्वाह किया है। जैसे तत्कालीन सामाजिक स्थिति, स्माज के रीतिरिवाज, रूढ़ी-परंपराएँ, उच्च-निम्न वर्ग भेद आदि का यथार्थ अंकन यहाँ हुआ है। इस प्रकार 'सूत्रधार' में ऐतिहासिकता की दृष्टि से अनेक उदाहरण हैं जो समय, स्थल के अनुरूप अत्यंत योग्य है।

'महात्मा' उपन्यास में भी डॉ. रवींद्र ठाकुर ने ऐतिहासिकता का निर्वाह किया है। प्रस्तुत उपन्यास महात्मा जोतिराव फुले के जीवन का अंकन तत्कालीन स्थितियों के अनुरूप ही किया है, जिसमें फुले के कुमार अवस्था से उनके मृत्यु तक का वर्णन आया है। इसलिए उपन्यास में तत्कालीन समाज की स्थिति, जोतिराव की मानसिकता, रूढ़ियाँ-परंपराओं को ढ़ोनेवाला उच्च वर्ग, निम्न वर्ग की दयनीयता, स्त्री की समाज में होनेवाली उपेक्षा, सामाजिक जीवन का वास्तव आदि का स्पष्ट अंकन हुआ है।

उपन्यास में स्वाधीनता आंदोलन का स्पष्ट चित्रण आया है, जिसमें तत्कालीन समय के युवक इन क्रांतिकारी गतिविधियों में सक्रिय रहा करते। जैसे - ''पुण्यात बंडाचे वारे वाहत आहेत. जोरात तयारी सुरू आहे. गुप्त मसलती शिजत आहेत. कित्येक देशभक्त तरूण बेलभंडार उचलण्यान्नाठी पुढे येत आहेत.''[1] (पूना में विद्रोह की हवा छा रही है। पुरी तैयारी शुरू है। गुप्त बातें हो रही है। कितने ही जवान देशभक्ति का बिड़ा उठाने के लिए सामने आ रहे हैं।)

ऐतिहासिकता के अनुसार तत्कालीन समय में समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत दयनीय थी। उसमें भी विधवाओं की तो दुर्गति हुआ करती। पति की मृत्यु के बाद उन्हें पति के साथ उसकी चिता में जौहर जाना पड़ता। इसमें उसकी इच्छा हो या ना हो और अगर ऐसे में कोई स्त्री चिता से भागने की कोशिश करती तो उसे फिर से उसी चिता में धकेल दिया जाता। जैसे - ''अशीच आणखी एक स्त्री पेटत्या ज्वाला अंगाला लागताच सरणावरुन उडी टाकून नदीच्या पाण्याकडं धावत सुटली होती. परंतु ब्राह्मणांनी ओढून आणून तिला जुलमानं सरणात ढकललं होतं आणि वरून मोठमोठे ओंडके टाकून तिचा

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 11

प्राण घेतला होता. पापडासारखी उलटीपालटी करून तिला मरेपर्यंत भाजून काढलं होतं.''[1] (ऐसे ही एक स्त्री जलती आग को अपने शरीर पर लेकर चिता से भाग गई और नदी के पानी की तरफ दौड़ी। लेकिन ब्राह्मणों ने उसे फिर खिंचकर बेरहमी से फिर चिता में धकेल दिया और ऊपर से बड़े-बड़े लकड़ियों को उस पर डालकर उसके प्राण ले लिए। पापड की तरह उलटी-सीधी कर मृत्यु तक उसे जला दिया।) ऐतिहासिकता के अनुसार यहाँ पर विधवाओं के दयनीय जीवन का चित्रण हुआ है।

तत्कालीन समय में आज जैसी स्वास्थ्य की सुविधा उपलब्ध नहीं थी। इस कारण गाँव में हैजा, प्लेग जैसी बिमारीयाँ गाँव-गाँव में फैली रहती और फिर पूरा गाँव इसकी चपेट में आ जाता।

स्पष्ट है कि विवेच्य उपन्यासों में ऐतिहासिकता का निर्वाह स्थान-स्थान पर हुआ है। तत्कालीन समाज के आचरण, रीतिरिवाज, सामाजिक दशाएँ, भावनाएँ तथा विचार, लोकचित्रण, लोक कथाएँ आदि के द्वारा साथ-साथ में पात्रों तथा कथानक के माध्यम से वातावरण मूर्त हो उठा है।

4.2 स्थल काल का निर्वाह :

उपन्यास में घटित घटनाएँ परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में देने से उनका प्रभाव बढ़ता है। आधुनिक आलोचक मानता है कि मनुष्य सामाजिक परिस्थिति की उपज है अत: परिस्थिति के संदर्भ में पात्रों का चरित्र चित्रण अधिक संगत एवं स्वाभाविक बन पड़ता है। आधुनिक उपन्यासकार पाठकों को कल्पना की दुनिया में लेकर जाना पसंद नहीं करता बल्कि यथार्थ जीवन का भ्रम उत्पन्न करना उसका लक्ष्य है। अत: पात्रों के चरित्र के पहलुओं का वर्णन लेखक परिस्थिति के सिलसिले में करता है, जिससे चरित्रों में यथार्थता आ जाती है। उपन्यास के पात्र सामाजिक जीवन का एक अंग बन जाते हैं।

वातावरण में उपयुक्त चित्रण के लिए स्थल एवं काल का सम्यक ज्ञान आवश्यक है। बिना कश्मीर गए या बिना अमरिका या योरोप को गए हम इन देशों का वर्णन नहीं कर सकते। किसी का जितना सही और स्पष्ट चित्रण अपने उपन्यास के युग

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 129

और उसकी परिस्थितियों का कर सकता है उतनी ही यथार्थ और सजीव वातावरण की वह सृष्टि कर सकेगा और उतनी ही आसानी से और सही रूप में उसके पात्र समझे जा सकेंगे। इसलिए स्थल, काल का निर्वाह दोनों उपन्यासों में आवश्यक है।

'सूत्रधार' और 'महात्मा' इन दोनों रचनाओं में हमें स्थल, काल का निर्वाह देखने को मिलता है। दोनों उपन्यासों के देशकाल में और समय में निरालापन है लेकिन उपन्यासकारों ने तत्कालीन समय के अनुरूप सामाजिक वातावरण, रूढ़ि-परंपराओं, लोकचित्रण, रीतिरिवाजों का अंकन किया है, जिसमें उपन्यासों में स्थल, काल का निर्वाह देखने को मिलता है।

'सूत्रधार' में संजीव ने भोजपुरी के प्रख्यात लोक कलाकार भिखारी ठाकुर को केंद्र में रखकर लिखा उपन्यास है। समय की दृष्टि से इसमें भिखारी के जन्म से लेकर मृत्यु तक की बातें हैं, जो उन्नीसवीं सदी के आठवें दशक से बीसवीं सदी के सातवें दशक तक की बातें इसमें प्रस्तुत हुई हैं।

'सूत्रधार' में 1914 के साल का वर्णन है जो भयानक अकाल और सूखे का रहा। इसी समय पहला महायुद्ध छिड़ गया था। इसका परिणाम सात समंदर पार भारत के छोटे से छोटे गाँव पर भी कैसे पड़ा इसका अंकन लेखक ने किया है। गाँव-गाँव के लोग इस स्थिति से पीड़ित परदेस भाग रहे थें। इसी में भिखारी भी खड़गपुर जाकर अपना व्यवसाय करते हैं, जहाँ पर नाईयों की अनेक बातें थीं। दाढ़ी बनाने के लिए रक़म भी तय थी, जैसे दाढ़ी के दो पैसा और बाल बनाने के लिए दो आने। यहाँ बाल के लिए 'चूल' शब्द था। जो स्थल के अनुरूप अत्यंत योग्य है क्योंकि बंगला में बाल को 'चूल' कहते हैं। साथ में बंगाल के सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण का अंकन भी किया है। अंग्रेजों की घृणाभरी नीति का अंकन किया है। साथ में अंग्रेज सरकार ने किस तरह से रेल, टेलिफोन, बिजली आदि का विकास किया था। ये सब बातें स्थल, काल के अनुरूप आयी हैं।

उपन्यास में कलकत्ता शहर का वर्णन भी आया है, जहाँ पर 'हाथ रिक्शा' को देखकर भिखारी चकित रह गए थे। ''सबसे पहले कलकत्ते में जिस वैभव ने चकित किया, वह था हाथ रिक्शा! माने आदमी को आदमी खींचकर ले जा रहा था, घोडे या बैल की तरह जुता हुआ, हाथ से ठन-ठन घुंघरू बजाता हुआ। सुना आसनपुर में भी ऐसा ही रिक्शा चलता है। वैसे कलकत्ते में हजार नियामतें थीं। एक नियामत गंगाजी थी, जिन्हें कुतुबपुर में छोड़ आया था।''[1]

इसी प्रकार भिखारी ठाकुर अपने नाचगिरोह के प्रदर्शन में जिन-जिन प्रदेशों में गए; जैसे - मुजफ्फरपुर, कुतुबपुर, चन्नरपुर, गोदना, कलकत्ता, आरा, सारन, बलिया, मुंगेर, भागलपुर, पटना और आसाम आदि स्थलों का वर्णन आया है।

उपन्यास में 15 जनवरी 1934 में हुए भूकंप का वर्णन आया। स्थल, काल के अनुरूप यह वर्णन अत्यंत यथार्थ है। भूकंप के कारण आयी तबाही का वर्णन किया है - ''मढिया में भूकंप की तबाही की नई-नई खबरें लेकर आते लोग। साहेबगंज से बनारस तक। समसे मुंगेर जिला मलबे में बदल गया है। सरकार उसे फिर से बसाने की सोच रही है। इतने आदमी और जानवर की लाशें सड़ रहीं हैं कि कोई उठानेवाला नहीं।''[2]

भूकंप के बाद आयी महंगाई का भी वर्णन आया है। साथ में उपन्यास में 1943 में आए भीषण बाढ़ का वर्णन भी है।

भिखारी दल प्रदर्शन के लिए आसाम तक गया था। जहाँ 'बेटी वियोग' का प्रदर्शन सफल नहीं रहा क्योंकि लोगों को भाषा की समस्या थी। उसके बाद मुनीमराय साहब ने बताया कि यहाँ बेटी बेचने की समस्या उस रूप में नहीं है, जो है वह धर्म-कर्म से जुड़ी है। यहाँ से पूरब बढ़ते जाने पर बेटी ही बेटे को ब्याहकर घर ले जाती है और वही घर सँभालती है। मर्द तो नशे में धुत् होते हैं। इस प्रकार स्थल, काल का निर्वाह उपन्यास में हुआ है।

'महात्मा' में भी डॉ. रवींद्र ठाकुर ने उचित स्थल, काल का निर्वाह किया है। 'महात्मा' महात्मा जोतिराव फुले की चरित-कहानी है। इसमें 19वीं सदी के पहले

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 41
2. वही, पृष्ठ - 168

दशक से लेकर नौवें दशक का वर्णन आया है। केंद्र में है महाराष्ट्र के पूना शहर, जहाँ पर तथाकथित बौद्धिक समझे जानेवाले ब्राह्मणों का राज है।

तत्कालीन समय में जाति-पाति की कट्टरता अधिक थी। जोतिराव फुले के पिता पेशवाई की बात सुनाते हैं कि, उस वक्त जाति-पाति की कट्टरता आज से अधिक थी। ब्राह्मण लोग शूद्रों का मुँह देखना तक पसंद नहीं करते थे। ब्राह्मणों की तरह धोती पहनना, तिलक लगाना आदि के लिए उन्हें मना था। उपन्यास में शनिवार वाडे का वर्णन आया है। जब पेशवों का राज था तब शूद्रों को मकान बनवाने से पहले जमीन में गाड़ दिया जाता। रास्ते पर खुले आम घूमना उनके लिए गुनाह था। चलना ही है तो कमरपर एक टहनी और गले में मिट्टी की हाँडी बाँधनी पड़ती। स्त्रियों की स्थिति इससे अधिक दयनीय थी।

उपन्यास में स्वाधीनता आंदोलन के समय का वर्णन आया है, जब देशभर में क्रांति की आग फैली थी। ऐसे में 1857 के क्रांति के दौरान पेशवों के नाम पर राज्य हथियाने का प्रयास असफल हुआ और पुरंदर तथा सातारा में क्रांति की आग फैली। जो उमाजी नाईक के बेटे की कैद के बाद बूझ गई। यह वर्णन स्थल और काल के अनुरूप हुआ है।

16 नवंबर 1852 में पूना के विश्रामबाग हवेली में जोतिराव ने किए सामाजिक कार्य के लिए उनका अंग्रेज सरकार की ओर से हार्दिक गौरव किया। यह स्थल के अनुरूप है।

सन् 1857 के राज्यक्रांति का वर्णन उपन्यास में अत्यंत यथार्थरूप में लेखक ने वर्णित किया है। राज्यक्रांति उसमें किस तरह अंग्रेजों ने इसे दबाने की की हुई कोशिश आदि का यथार्थ अंकन उपन्यास में प्राप्त होता है। जैसे - ''बिहारमध्ये पाटण्यात उसळलेला दंगा जागीच चिरडला गेला. महाराष्ट्रातल्या उठावाची तीच गत झाली. कोल्हापूर संस्थानात छत्रपतींचे बंधू चिमासाहेब महाराजांना अटक झाली. साताऱ्यात रंगो बापूजींच्या नेतृत्वाखाली शिजलेला कट फितुरीमुळं उघडकीस आला...''[1] (बिहार में पटना में भडक

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 123

उठा दंगा वहीं पर मिटा दिया गया। महाराष्ट्र के आंदोलन की भी वही स्थिति हो गई। कोल्हापुर संस्थान के छत्रपति के भाई चिमासाहेब महाराज को गिरफ्तार किया। सातारा में रंगो बापूजी के नेतृत्व में पकी साजिश धोखे की वजह से सामने आयी...।)

'महात्मा' में वर्णित स्थिति स्वाधीनता पूर्व की है। जिस समय में समाज में सामाजिक बंधन तथा रीतिरिवाजों का अधिक बोलबाला था। ऐसे में समाज में विधवाओं की स्थिति अत्यंत करूण थी। उपन्यास में सोलापुर जिले के माढ़ा गांव में घटित घटना का उल्लेख आया है - ''एका ब्राह्मण गृहस्थाची विधवा बहीण अतिवृष्टीमुळं कोसळलेल्या घराखाली सापडून मरण पावली होती. विधवा असूनही तिचं वपन झालेलं नसल्यानं गावातले ब्राह्मण तिच्या प्रेताला हात लावायला तयार नव्हते. शेवटी शूद्राच्या हातून तिला अग्निसंस्कार द्यावा लागला होता.''[1] (एक ब्राह्मण की विधवा बहन अतिवृष्टि की वजह से मकान गिरने से उसमें दबकर मर गई। लेकिन विधवा होकर भी उसका मुंड़न नहीं हुआ था, तो गाँव के ब्राह्मणों ने उसकी लाश को हाथ तक नहीं लगाया। अंत में शूद्र के हाथों से उसके अंतिम संस्कार कर डाले।)

स्पष्ट है कि तत्कालीन समय में समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत सोचनीय थी। उसमें भी विधवाओं की तो दुर्गति हुआ करती थी।

इस प्रकार विवेच्य दोनों उपन्यासों में वर्णित घटनाएँ परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में प्रभाव बढ़ाते हैं। इसी परिस्थिति के उपज के कारण यहाँ वर्णित चरित्र चित्रण अधिक संगत एवं स्वाभाविक बन पड़ा है। स्थल और काल दोनों की उपयुक्त संगति यहाँ बिठाई गई है, जिससे पूरा परिवेश तत्कालीन समय के अनुरूप वर्णित है। उचित घटनाओं का यहाँ उचित स्थल पर क्रियान्वय हुआ है, जिससे पूरा वातावरण यथार्थ हो उठा है। कहना सही होगा कि दोनों उपन्यासकारों ने अपने उपन्यास में स्थल एवं काल का उचित निर्वाह किया है।

4.3 दोनों महात्मा के रूप में चित्रित :

समाज के हीत के लिए अपना सर्वस्व त्याग देनेवाले विरले लोग ही

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 128

'महात्मा' होते हैं। जो अपनी पीयूषवर्षिणी उपदेशमयी वाणी से एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा करते हैं। जो अपने स्वाभाविक, निश्चल, व्यावहारिक तथा विश्वासमय रूप में जन के साथ विश्व को भी जागृत करते हैं। जन-जन में पुन:जागरण का पावन संदेश देते हैं। जीवन को एक आशामयी दृष्टि प्रदान करते हैं वही संत होते हैं।

'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर भोजपुरी के नटसम्राट थे। एक नदी के समान जो सारा सुंदर-असुंदर, पवित्र-अपवित्र अपने में समेटे हुये सतत प्रवाहमान रहती है। इसी उजली नदी की महाकथा है 'सूत्रधार'। महान दास्तानों को मुँह चिढ़ाती, दु:खों से छलनी हो आए मुँह दूबर आदमी की कथा जो नटसम्राट था, व्यास था, अपनी जनता का दुलारा था, भोजपुरी का शेक्सपीयर था, एक महात्मा था। उम्रभर जिसने मान और अपमान के शिखर देखें, पग-पग पर लांछन, तिरस्कार और घूटन सही, छोटी जाति में पैदा होने का दंश झेला। अपनी लाचार और परवश जिंदगी से छूटने और आसमान छूने की ललक जिसमें थी। जात-पात से बाहर समस्त समदर्शी समाज रचने की आकांक्षा करनेवाला यह व्यक्ति लोकमानस पर राज करता रहा। अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ते-लड़ते जिसने उम्र गुजार दी। यही उसके जीवन का सच रहा। भिखारी का जीवन भिखारी से शुरू होता है और ठाकुर के शिखर तक पहुँचता है। असल में एक महात्मा के रूप में हम उन्हें देखते हैं।

महात्मा के जो गुण हैं उपदेशमयी वाणी, नैतिकता की प्रतिष्ठा, स्वाभाविकता, निश्चलता, जन को जागृत करना, समता-सदाचार की प्रतिष्ठा करना आदि गुण हमें भिखारी ठाकुर में मिलते हैं। उपन्यास में उनका 'महात्मा' का रूप स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है।

कुतुबपुर में सात दिन तक फगुआ खेला जाता है। लिखने की प्रेरणा जब भिखारी लेना चाहते हैं तो उनका मन किसी अनजानी-सी बंदिश से जुड़ता है, जिसके घेरे में मन घुटा जाता है। जब महात्मा साधु गोसाई जी उन्हें देश के बड़े नेता, संतों के बारे में लिखने के लिए कहते हैं तो भिखारी उन्हें कहते हैं - "मैं कुँवर सिंह से ज्यादा रामानंद सिंह को जानता हूँ, मंगल पांडे से ज्यादा साधू गोसाई को, मोरध्वज दंपति से ज्यादा अपने मुझे

धोबाइन भौजी और भइया लगते हैं। दधीचि से ज्यादा प्यारे मुझे अपने गाँव-जवार के जीवित लोग लगते हैं, बाभन रजपूत से लेकर चमार, दुसाध तक सभी। बड़े लोगों की बड़ी बात - उनकी महानता की दास्तान विद्वान पंडित, ज्ञानी लोग लिखेंगे। देश-दुनिया के बारे में बड़का-बड़का नेता गान्ही बाबा, जयपरकाशजी, राजेंदर बाबू सोचेंगे, मुझे तो दु:खों से छलनी हो आए, मुँह दूबर लोगों के बारे में सोचने दो, जिन्हें मैं जनम से देखता रहा हूँ, चीन्हता रहा हूँ...। हम बहुत कमजोर अमदी हैं, बहुत ही कमजोर।''[1]

यहाँ पर भिखारी ठाकुर आम लोगों के दु:ख-दर्द को कितने सहजता के साथ महसूस करते हैं। खुद तो टूटे लेकिन समाज के दर्प और खोखले अहंकार को भी तोड़ा। जब इस तरह व्यक्ति समाज के दु:खों को स्वयं भोगता है, समझता है तो वह उनमें से ही एक होता है। भिखारी अपने साहित्य में दु:खों से छलनी हो आए लोगों के बारे में ही लिखना चाहते हैं। ऐसे में ही उन्होंने अपना साहित्य सृजित किया। गाँव की बबुनी जिसका ब्याह बूढ़े वर के साथ कर दिया, उसके दु:ख को तो भिखारी ही जानते हैं। उसका विलाप कितना गहरा था जो याद कर उनका मन काँप उठता। उसी शादी में मिली गुलाबी धोती उन्हें विधवाओं के सफेद धोती-सी लगती है और इसी दर्द से सृजित होता है 'बेटी वियोग'।

स्त्री-मुक्ति का महत्त्व भिखारी ठाकुर बहुत पहले जान चुके थे। इसी कारण उन्होंने स्त्री को बड़े कायदे और करीने से अपने नाटकों में रख दिया था। स्त्री को वे अपनी मर्यादा मानते हैं, जो अपने संस्कृति, परंपरा आदि का प्रतिक है। स्त्री कोई भोग की वस्तु नहीं है, तो वह साक्षात् वात्सल्य की मूर्ति है ऐसा उनका मानना था।

भिखारी का सबसे बड़ा गुण था उदारता। अपने इसी उदारता के कारण उन्होंने न जाने कितने लोगों की सहाय्यता की। दल से बाहर गए लालू और सोमारू के प्रति भी वह उदारता का ही भाव रखते हैं। उनके प्रति कोई द्वेष या ईर्ष्या का भाव उनके मन में न था। क्योंकि, ''गुरू हारें या जीतें हमेशा आशीर्वाद ही निकलता है शिष्य के लिए।''[2] ऐसी उदारता तो महात्मा में ही दिखाई देती है।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 140
2. वही, पृष्ठ - 190

भिखारी ठाकुर को मिर्चइया बाबा 'महात्मा' की उपाधि देते हैं। मिर्चइया बाबा खुद शिवकलीदेवी से मिले थे। ''यही बात तो लोगों की समझ में नहीं आ रही थी। लोग हैरान! बाबा एक ही अगम गियानी, जो भाख दे, वो झूठ कैसे हो? बोले, इसके पेट से हमसे भी बड़े महात्मा ने जनम लिया है - जेकर नाम है भिखारी ठाकुर। अइसन धरमातमा माई के गोड़ ना लाग ब त अ केकर लागब?''[1]

लांछना और अपमान की आग में भिखारी जीवनभर जले लेकिन फिर भी अपने कार्य को नहीं छोड़ा। जीवन की तपती हुई भट्टी से हर बार भिखारी निकले कुछ हिस्सा जला, छुटा भी लेकिन इस कार्य से पीछे नहीं हटे। मर्यादा को हमेशा सँभालते रहे।

अत: पूरे उपन्यास में हमें भिखारी ठाकुर का 'महात्मा' रूप दिखाई देता है जो अपना सर्वस्व त्याग देने को तैयार है, जो एक दृढ़ नैतिकता की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं, जो समाज की हर नस को पहचानकर उसकी चेतना को जागृत करना चाहते हैं। सामाजिक परिवर्तन के साथ समता के लिए अविरत प्रयास जिसने किए वही भिखारी ठाकुर सच में एक 'महात्मा' ही है।

'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले को लोगों ने 'महात्मा' उपाधि दी। यह उनके कार्य का, उनके जीवनभर के परिश्रम का, उन्होंने सही त्रासदी, पीड़ा का जनसमुदाय की ओर से उन्हें मिला सम्मान था।

आज युग में महात्मा फुले के विचार कितने प्रेरक, मार्गदर्शक, स्फुर्तिदायक हैं यह अलग से बताने की जरूरत नहीं है। महात्मा फुले ने रचा हुआ साहित्य आज देश-विदेश में प्रसिद्धि पा रहा है। फुले ने खेती सुधार, तंत्रशिक्षा, पर्यावरण आरक्षण, अस्पृश्यता निवारण, देवदासी प्रथा का निर्मूलन, अंधविश्वास निर्मूलन, स्त्री समता, अस्पृश्यों की शिक्षा आदि अनेक विषयों पर साहित्य रचा और सिर्फ ये रचनाएँ ही नहीं लिखी तो इस दृष्टि से अपना कार्य भी जारी रखा।

सदियों से उच्च वर्ग, निम्न वर्ग पर अपना अधिकार जता रहा है। वर्णश्रेष्ठता, जातियता, स्वर्ग-नरक की कल्पना, तैंतीस करोड़ देवता आदि बातें फुले को

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 192

झूठी लगती हैं। उनका कहना है कि जातीयता के बंधनों में सबको फँसाकर उसमें अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए ही ब्राह्मणों ने इन ग्रंथों की रचना की है और युगों से यह यहाँ की जनता पर राज करते आ रहे हैं। उसका शोषण कर रहे हैं। इसलिए इस सोयी हुई जनता को जोतिराव जागृत करना चाहते हैं, क्योंकि चुप बैठकर कुछ भी हासिल नहीं हो सकता। इसलिए दलितों के लिए शिक्षा के द्वार खोलना अत्यंत आवश्यक है यह बात वे मानते थे। इससे समाज में जागृति आकर यह निद्रिस्त समाज अपने पर हो रहे अन्याय का जवाब देगा इसी प्रेरणा से सन् 1848 में भिडे की हवेली में पूना में स्त्रियों का पहला स्कूल उन्होंने खुलवाया।

भारतीय समाज वर्षों से पुराने रीतिरिवाजों को साथ लिए आ रहा है। ऊपर से अशिक्षित समाज अपने सोच के कारण अंधविश्वास में फँसा रहता। अमावस, पूनम को लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते थे। उनका कहना था, बच्चा बीमार पड़ जाता है, लड़कियाँ विधवा हो जाएँगी, छपी किताबों के कारण बच्चे पगला जाएँगे। उनके इस अंधविश्वास को जोतिराव फुले को दूर करना पड़ा। वे उन सभी लोगों को इस बारे में समझाते रहते - ''मुलं शिकली नाहीत तर उनाड होतील. चोर-दरोडेखोर बनतील. त्यामुळं आमचं सुखसमाधान नष्ट होईल. पण त्यांना शिक्षा करण्यासाठी सरकारला जी जास्तीची न्यायालयं उभारावी लागतील, त्याचा भार आमच्याच बोडक्यावर पडेल. शिवाय ही पोरं उद्या दुर्वर्तनी आणि व्यभिचारी निघाली तर त्याची बेड्या घालून धिंड निघेल, तेव्हा ते पाहताना किती दु:ख होईल?''[1] (बच्चे पढ़ेंगे नहीं तो आवारा हो जाएंगे। चोर-डाकू बन जाएंगे। इससे हमारी सुख-शांति तो समाप्त ही हो जाएगी। लेकिन उन्हें सजा दिलाने के लिए सरकार को अधिक न्यायालय खुलवाने पडेंगे और इस सबका बोझ हमारे ही सिर पर आन पडेगा और साथ में बच्चे कल दूराचारी, व्यभिचारी निकलें तो उनकी हथकड़ियों के साथ यात्रा निकलेंगे, तब यह सब देखकर आपको ही कितना दु:ख होगा?)

जोतिराव फुले के समाजकार्य और सुधारित विचारों का प्रभाव दिनोंदिन समाज पर बढ़ता गया लेकिन सदियों से समाज पर राज करनेवाले उच्च वर्ग के लोगों का

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 104

फुले के कार्य के प्रति विरोध ही रहा। यह विरोध हर बात में था। यह लोग उनके हर कार्य में बाधा डाल देते। इनका विरोध इतना बढ़ा कि उन्होंने फुले को मारने के लिए लोग भेज दिए लेकिन अपनी पीयुषवर्षिणी वाणी के बल फुले ने उन्हें सही राह दिखाई। अपनी सहिष्णुता तथा उदारता का परिचय फुले ने दे दिया। मानवता को सर्वश्रेष्ठ साबित कर दिया। वे कहते भी हैं - ''नाही, धोंडीबा असा विचारही मनात आणू नका. त्यांनी एक चूक केली म्हणून तुम्ही दुसरी चूक करू नका. त्यांना क्षमा करणं हीच त्यांना मोठी शिक्षा ठरेल. आपलं अज्ञान हेच या अनर्थाला कारणीभूत आहे. ते दूर करण्यासाठी झटू या. कोणावर सूड घेऊन, रक्तपात करून का आपली उन्नती होणार आहे? आपण सारी एकाच ईश्वराची लेकरे. त्या नात्याने तेही आपले बांधवच आहेत. आज ना उद्या त्यांना आपल्या कृत्यांचा पश्चाताप होईल. तीच त्यांना खरी शिक्षा ठरेल.''[1] (नहीं धोंडिबा, ऐसा विचार भी मन में नहीं लाना। उन्होंने एक भूल कर दी इसलिए तुम दूसरी भूल मत करना। उन्हें माफ करना ही उन्हें सबसे बड़ी सजा होगी। अपना अज्ञान यही इसका बड़ा कारण है। वह दूर करने के लिए हमें प्रयास करना है। किसी का बदला लेकर, खून बहाकर हम अपनी उन्नती कर सकते हैं? हम सब एक ही ईश्वर की संतान हैं। इस रिश्ते से तो हम सब भाई हैं। आज ना कल उन्हें अपनी बात का पछतावा होगा ही। वही उनके लिए सबसे बड़ी सजा होगी।) इस प्रकार फुले हर व्यक्ति के प्रति सहिष्णु भाव रखते थे।

पूना जैसे सनातनी मानसिकता वाले शहर में फुले ने अपना समाजकार्य किया। दलितों के शिक्षा, उनके अधिकार, विधवाओं का पुनर्विवाह, अनाथ बच्ची के लिए आश्रम आदि करते समय उन्हें शारीरिक तथा मानसिक यातनाओं को सहन करना पड़ा। मन की उदारता, सत्यता, दीन-हीनों के प्रति प्रेम, स्त्रियों के प्रति आदरभाव, प्रगतिशील विचार, आदर्श विचार, अनाथ बच्चों के प्रति सहानुभूति आदि से एक व्यक्ति उभरता है जिसे समाज ने उम्र के 60 वें वर्ष में 12 मई 1888 को मांडवी के कोलीवाडा में 'महात्मा' उपाधि से नवाजा, वे थे महात्मा जोतिराव फुले।

जीवन भर अन्याय के विरोध में अपनी लड़ाई लड़नेवाले, आजीवन परिश्रम

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 116

कर अज्ञान का अंधेरा दूर करने की कोशिश करनेवाले, सामाजिक परिवर्तन के साथ समता के लिए प्रयास करनेवाले फुले के उदारता, सहिष्णुता, मानवता, दया, समता आदि भावों का उत्कट चित्रण उपन्यास में होता है। स्थान-स्थान पर यह उनके व्यक्तित्व के गुण दिखाई देते हैं जो उन्हें 'महात्मा' के उपाधि तक ले जाते हैं। यह उपाधि तो सामान्य लोगों से ही उन्हें मिली। यह उनके कार्य का किया सच्चा गौरव था।

इस प्रकार विवेच्य उपन्यासों के नायक भिखारी ठाकुर और महात्मा जोतिराव फुले इनके चरित्र चित्रण के प्रवृत्ति में हम दोनों नायकों को महात्मा के रूप में देखते हैं। दोनों ने स्थापित व्यवस्था के प्रति अपने व्यक्तित्व से आवाज कड़ी की। जिसकी गूँज से समाज में अनेक परिवर्तन आए जो समाज के उन्नति के लिए अत्यंत आवश्यक थे।

4.4 दोनों विचारवंत के रूप में चित्रित :

'सूत्रधार' जीवन का महान आख्याता 'सूत्रधार' याने राहुल सांस्कृत्यायन ने जिसे 'भोजपुरी का शेक्सपीयर' ऐसे भिखारी ठाकुर को भी 'रेकार' और अपमान सूचक जातिवाची विशेषणों से संबोधित किया जाता। जिन्होंने ज्ञान के स्वर्णमहल में नंगे पाँव, घुटनों तक धोती लपेटे और पगड़ी पहनकर घुसने का दुस्साहस किया था। जिन्होंने ज्ञान के एकाधिकार पर गहरी चोट कर उसे जनता के बीच ले आए थे। ऐसे भिखारी ठाकुर के पास सिर्फ ताकतवर दिल ही नहीं तो समाज से लड़ने के लिये चौकन्ने और हर पल सक्रिय दिमाग भी था। यहीं लेकर कूद पड़े इस महासागर में। एक साथ दो-दो लड़ाइयाँ लड़ी। एक घर में खुद से, परिजनों से और दूसरी लड़ाई बृहत्तर देश-जहान से। इसमें बहुत कुछ खोया भी पाया भी, मौत को बता बताई और जिन्दगी से आँखें चार की, ऐसे भिखारी न केवल एक लोक कलाकार थे तो एक सशक्त विचारवंत भी थे।

सदियों से संकुचित विचारों वाले इस समाज ने हमेशा भिखारी की अवहेलना ही की थी। इसी में पले-बड़े भिखारी समाज की इस घृणाभरी नजरों से तंग आय थे। समाज में स्त्रियों की दुर्गति बहुत निकटता से उन्होंने देखी थी क्योंकि वे जाति से नाई थे। इस कारण घर-परिवार से अधिक सरोकार आता। तत्कालीन समय में स्त्रियों की स्थिति

अत्यंत करूण थी। विधवाओं की तो दुर्गति हुआ करती। उनके मुंडन किए जाते। जब धनीसिंह के विधवा के केशवपन की जिम्मेदारी भिखारी पर आ जाती है तो उनका कलेजा मुँह तक आता है। यह वही स्त्री थी, जिसके पति ने पाप किए फिर भी जिसके लिए इस स्त्री ने उसे माफ कर उसकी पूजा-अर्चना की। ऐसे स्त्री के केशवपन करना बहुत कष्टप्रद था। समाज के इसी गली-सड़ी रूढि के प्रति उनके मन में तीव्र आक्रोश था। स्त्री के प्रति वे आदर का भाव रखते। स्त्री को स्वयं जीवन जीने, जीवनसाथी चुनने का अधिकार होना चाहिए ऐसा उनका मत था।

'नाई' लोगों की समाज में की जानेवाली अवहेलना से भिखारी वाकिफ थे। वे कहते हैं - ''बच्चे के सउरी में जनमते ही सुधि आती है नाई की कि आओ, नौ महीने का पाप लेकर बच्चे और बच्चे की माई को पवित्र करो। नेग ? बबुआ हुआ तो चार आना और बबुनी हुई तो दो आना। सउरी के काम नह काटने, नहावन कराने तक काम ही काम हैं नाई-नाइन के जब कि पंडित बैठे-बैठे जन्मकुंडली और पतरा देखकर बाईस सपरा ऐंठता हैं।''[1] इसी पीड़ा से वे तड़प उठते हैं। यह भेदभाव, जांतिगत दुर्भाग्य, जहाँ-तहाँ उन्हें कौंचता हैं। उनका विचार था, ''लड़ाई सिर्फ समरभूमि में ही नहीं लड़ी जाती, सिर्फ आदमी रूपी शत्रु से ही नहीं, सिर्फ पशु-पक्षी, जीव-जन्तु से ही नहीं, लड़ाई पाप के विरूद्ध भी लड़ी जाती हैं। यह लड़ाई दूसरी लड़ाइयों से ज्यादा कठिन होती है और इस लड़ाई का एकमात्र योद्धा कौन है - नाई ! छत्रीसों कौमों के पातक से लड़ना कोई मजाक नहीं। लड़ो, लेकिन पैसा मत माँगों। पैसे माँगे नहीं कि जजमान की आँख में खून उतर जाएगा।''[2]

समाज में 'मरजाद' याने मर्यादा की स्थापना और उसे बनाए रखना भिखारी ठाकुर आवश्यक मानते हैं। इसी लिए भिखारी ने नाच को अश्लीलता और भडैती से निकाल कर कलात्मक दर्जे तक पहुँचाया। उसे सच के साथ जोड़कर सामाजिक परिवर्तन हा हथियार बना डाला। नाच को शिव जी का वरदान माना। इस बारे में उनके विचार थे, ''त-अ भाई लोगन, लबार के अतने काम बा-कि हँसी मजाक के फुरेरा भी छूटत रहे और

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 161
2. वही, पृष्ठ - 162

मरजाद भी बनत रहे। कतना चीजु बा जौना पे लबारी कइल जा सकेला समाज की गन्दगी, धरम के नाम पे अधरम बड लोगन के छोट काम, कोई भी चीज, जौनी से समाज के आँखि खुले। खाली मेहरारू के पीछे खस्सी की तरह बों-बों करते हुए दौड़ना हो लबारी नहीं है।''[1]

भिखारी ठाकुर ने अपना गीत लिखने के बाद वह जनता को सौंप दिया। उनका मानना था कि ''तनी समझने की कोशिश करो, गीत अब हमरा रहा ही कहाँ। लिख देने के बाद तो वह समसे समाज का हो गया। हर आदमी में उसकी जिनगी की तरंग, दु:ख, तकलीफ में जो गीत पनपा, फरा-फुलाया, गम-गम गमका वह उसकी आतमा का हुलास या विलाप है, हम और तुम इनको रोकनेवाले कौन है ?''[2]

इस प्रकार अशिक्षित होकर भी भिखारी ठाकुर के प्रगतिशील विचार हमें उपन्यास में स्थान-स्थान पर दिखाई देते हैं। यहाँ पर उनका विचारवंत का रूप दृष्टिगोचर होता हैं।

'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले ने परंपरागत समाज में पीढ़ियों से चले आए संकुचित विचारधारा, दीन-दुखियों पर होते आ रहे प्रहार, सामाजिक विषमता, शूद्रों की करूणापूर्ण स्थिति, किसानों की दुर्दशा आदि सभी के सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा करनेवाले फुले के विचार उतने ही आदर्श, प्रगतिशील, क्रांतिकारी दिखाई देते है।

धर्म के बारे में जोतिराव फुले का मानना था कि ईश्वर निष्ठा नैतिक सत्य का आचरण है यही धर्म जीवन हैं। यह सृष्टि ईश्वर ने निर्माण की है और यहीं हमें दिखाई देती है। यही उनके मत से धर्मग्रंथ था। दुनिया के हर मानव का धर्म एक ही है और वह 'मानवता' धर्म ही है और उसके स्वतंत्रता में हस्तक्षेप करने का अधिकार किसी को नहीं है। फुले समाज के अनर्थ का मूल अविद्या को मानते हैं। वे कहते हैं - ''विद्येविना मती गेली। मती विना नीति गेली।''[3]

तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति अत्यंत सोचनीय थी। विधवाओं को तो पति के साथ उसकी चिता पर ही जला दिया जाता। इस घृणित रीति के विरोध में

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 220
2. वही, पृष्ठ - 293
3. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 330

फुले के विचार थे - ''स्त्रियांनी शास्त्रं लिहिली असती, तर त्यांनी निश्चित इतका दृष्टावा केला नसता निसर्ग-नियमानं पाहिलं तर स्त्री ही पुरूषा पेक्षा श्रेष्ठ आहे. परंतु तिच्या असहायतेचा फायदा घेऊन पुरूषांनी तिला गुलाम केलं आहे. पातिव्रत्यांचे गोडवे गाणाऱ्या या दुष्टांपैकी एक तरी बायको मेली म्हणून तिच्यासोबत सता गेला आहे का ? बायकोच्या उरावर सवती आणून बसवणारे हे दुष्ट स्वत:च्या उरावर सवता का आणून बसवत नाही ? विधवांना लग्नांची परवानगी नाही, मग विधुरांना तरी ती कोणी दिली ? आर्यभटांच्या स्वहितसाधू शास्त्रात तसा एखाद्या लेख का सापडत नाही? हा सगळा या स्वार्थसाधू आर्यभटांचा गोम काला आहे. या दुष्टांनीच स्त्रियांवर अन्याय करणारे पक्षपाती आणि तर्कहीन लेख शास्त्रांत घुसडून त्यांना अधोगतिच्या पाताळगर्तेत ढकलंल आहे. निदान त्यांनी आपणही एका स्त्रीच्या पोटी जन्म घेतला आहे याची तरी आठवण ठेवायची होती. स्त्रीच्या पोटी जन्म घेऊन त्यांनी तिचे चांगले उपकार फेडले आहेत. सावित्रीबाई स्त्रियांचा छळ केल्यामुळंच या देशाची ही अधोगती झाली आहे. ती थांबवायची असेल तर आधी स्त्रियांवरचे अत्याचार थांबवले पाहिजेत.''[1] (स्त्रियों ने अगर शास्त्र लिखे होते तो निश्चित इतनी दुष्टता न की होती। सृष्टि के नियम के अनुसार देखा जाए तो पुरूष से अधिक स्त्री श्रेष्ठ है। लेकिन उसके दुर्बलता का फायदा पुरूषों ने उठाकर उसे गुलाम बनवाया। पतिव्रता का बोलबाला करनेवाले इन दुष्टों में से किसी ने भी अपने पत्नी को मृत्यु के बाद खुद जौहर किया है ? पत्नी होते सौत लानेवाले यह दुष्ट खुद पत्नी का दूसरा पति क्यों नहीं लाते ? विधवोंओं को शादी की मान्यता नहीं तो फिर विधुरों को क्यों दी? आर्यभटों के स्वहित साधू शास्त्र में इस प्रकार कोई लेख क्यों नहीं मिलता ? यह सब उन स्वार्थी वृत्तिवाले आर्यभटों का ही काम है। इन्हीं दुष्टो नें स्त्रियों पर अन्याय करने वाले और तर्कहीन लेख शास्त्रों में घूसेड दिए है और इसे अधोगति के खाई में धकेला है। उन्हें सिर्फ इस बात का ध्यान तो रखना चाहिए था कि, उन्होंने भी एक स्त्री के पेट से जन्म लिया है। स्त्री के पेट जन्म लेकर उसके अच्छे उपकार चुकाए है, सावित्रीबाई ! स्त्रियों पर अत्याचार करने से ही इस देश की यह अधोगति हो गई। यह सब रोकने के लिए स्त्रियों पर हो रहें अत्याचार रोकने होंगे।)

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 129-130

महात्मा जोतिराव फुले ने परंपरागत चली आ रही सड़ी-गती रूढियों को नकार दिया। उच्च वर्ग जो बरसों से दलित लोगों पर अन्याय-अत्याचार कर रहा था इसका विरोध किया। वे ब्राह्मण जांति के खिलाफ नहीं थे तो जातिभेद लाने वाली ब्राह्मण वृत्ति को ही वे अपना शत्रु मानते थे। अपने इन्हीं विचारों से उन्होंने 'सार्वजनिक सत्यधर्म' की स्थापना की। उनका मानना था कि, मनुष्य के लिए अलग-अलग धर्म नहीं हो सकते क्योंकि सभी का निर्माता तो एक ही ईश्वर है। सबसे बड़ा धर्म तो 'मानवता' धर्म हैं।

इस प्रकार विवेच्य उपन्यासों के भिखारी ठाकुर और महात्मा जोतिराव फुले दोनों श्रेष्ठ विचारवंत के रूप में यहाँ प्रस्तुत होते हैं। दोनों के विचार समाज के हीत में थे। जो मानवता को श्रेष्ठ मानते थे। शोषितों के प्रति करूणभाव और उनके विकास की दृष्टि रखनेवाले ये दोनों नायक हैं।

4.4 दोनों अधिकार की लड़ाई लड़नेवाले :

'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर की नियति थी जलना और रौशन होना। अपमान और लांछना की आग में जीवनभर जले थे भिखारी ठाकुर। लेकिन इसी आग से ही उभरा था भिखारी का अस्तित्व। अपने साथ समाज को भी हर बार अपने अधिकारों के प्रति सचेत करते रहें। सिर्फ सचेत ही नहीं तो यह लड़ाई भी जीवनभर लड़ते रहें। जिसमें बहुत कुछ खोया और बहुत कुछ पाया भी। अधिकार की लड़ाई में कभी जीत भी मिलती तो कभी हार भी लेकिन यह लड़ाई तो जारी ही थी।

भिखारी को जाति का एहसास बार-बार समाज करा ही देता। इसी एहसास में उनका कवि रूप दबा देता। उनकी प्रतिभा की अवहेलना करा देता। भिखारी तब तिलमिला उठते हैं, ''तीस बरस तक जीवन की जो यात्रा की वह सब ऐसे ही की। इस यात्रा में विद्वानों के इस संग साथ में पता चल गया कि, थोडी-सी वाह-वाही के बलपर खुद को तीसमार खाँ समझने की भूल न करो। ज्ञान का कितना बड़ा समुन्दर पड़ा है और कितना कम जानते हो तुम। पढ़ा-लिखा आदमी तो पोथियों से भी बहुत कुछ ज्ञान हासिल

कर लेता है और तुम हो-होकर रामायण भर पढ़ सकते हो। विद्या से हीन, जाति से हीन, धन-दौलत से हीन। उन्हें लगा उनके सारे रास्ते बन्द है - जिस पत्थर पर पाँव रखते है वहीं डूब जाता है। उन्हें अपनी पोथियाँ अपनी कविताई, अपने तमाशे, अपना गिरोह-सब छूछे लगने लगे। ''जो कवित्र नहीं बुध आदर हीं से श्रम वाद वाल कवि करहीं।'' बहाने जो भी बना लिए जाएँ, बडी जातियों और विद्वानों के समाज में तुम आज भी वही हो भिखारी नाई। वहाँ रंडियों के कोठे वाले मिसिर जी तो स्वीकार्य हैं, मग तुम नहीं, अपनी तमाम भक्ति और सदिच्छा के बावजूद।''[1]

यहाँ मिसिर एक ब्राह्मण होने के कारण उसके सभी गलत कामों को समाज माफ कर देता है। लेकिन सिर्फ जाति से हीन होने के कारण अपनी सदिच्छा और भक्ति भी भिखारी की स्वीकारी नहीं जाती। यही बात उन्हें कौंचती रहती हैं। इसी मन के अपनी तड़प को भिखारी कागज पर उतार देते हैं और फिर एक से बढ़कर एक काव्य रचा जाता।

अपने साहित्य के द्वारा भिखारी ने जनसामान्य को अपने अधिकारों के प्रति सचेत किया। 'बेटी वियोग' जैसे काव्य से स्त्री मुक्ति का महत्त्व स्पष्ट कर, स्त्रियों को उनके अधिकारों के प्रति सचेत किया। गुलाम भारत में सामंती फांस में फँसे रुढिबद्ध समाज को भिखारी ने चीर कर रख दिया था। एक लबार याने विदुषक अपनी लबारी से पूरे समाज को उसका आईना दिखाता हैं। उसीं आईने में परछाइयाँ थीं और जलते सवाल। हर विषय पर वह इस प्रकार सवाल रख देते जिससे समाज सोचने के लिए मजबूर हो उठे। यही उनकी आवाज गाँव-जबार से वेश तक पहुँच जाती।

अधिकारों के प्रति लड़ाई लड़ने वाले भिखारी ठाकुर के नाच प्रदर्शन के लिए बड़ी संस्था में युवक-युवतियाँ आकर्षित हो जाती। तभी उच्च वर्ग के लोगों से इसका विरोध होता। उनका मानना था कि, भिखारी सारे लड़के-लड़कियों को खराब कर देता है।

एक तरफ तो प्रदर्शन को विरोध होता। वहीं दूसरी ओर जन में क्रांति की आग फैलती। इस प्रकार भिखारी ठाकुर अधिकार की लड़ाई लड़नेवाले व्यक्ति थे। जिन्होंने इसके लिए कड़ा संघर्ष किया।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 134

'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले प्रस्थापित समाज के विरोध में जिन्होंने अपना कार्य किया, दीन-हीन, शोषितों के प्रति जागृक रहनेवाले, फुले ने उम्र भर अन्याय के विरोध में अपनी अधिकार की लड़ाई लड़ी थी।

अपने दोस्त के शादी के बारात में जब फुले का अपमान किया जाता है तब फुले क्रोधित हो उठते है। धर्म के उच्च-नीचता के प्रति समाज के नियमों को वह नकार देते है। उच्च वर्ग का यह शोषण वे मान्य नहीं करते। उनका कहना था कि, 'हिंदू' अगर ब्राह्मण ही हैं तो शूद्र भी तो हिंदू ही हैं, फिर वे हीन कैसे ? ''त्यांचा आणि माझा धर्म एकच आहे ! ते हिंदू आहेत. तसा मी ही हिंदू आहे. मग मी हीन कसा ? मी ही एक माणूसच आहे ना ? कशाच्या आधारावर ते मला हीन समजतात? कशासाठी मी हा जुलूम सहन करायचा''[1] (उनका और मेरा धर्म एक ही है। वे हिंदू है तो मैं भी हिंदू ही हूँ। फिर मैं कैसे हीन ? मैं भी तो एक इन्सान हूँ ? किस के सहारे वे मुझे हीन समझते हैं ? किसलिए मैं यह जुल्म बर्दाश्त करूं) इस प्रकार फुले अपने अधिकारों के प्रति सचेत थे।

निम्नवर्ग के शिक्षा का प्रयास फुले ने किया। उनके लिए स्कूल खुलवाने की कोशिश करते है। सदियों से चली आयी रूढ़ियों के तले दबा समाज इस परिवर्तन को सहजता के साध स्वीकार नहीं कर रहा था। तभी फुले उन्हें अपने अधिकारों के बारें में सचेत करा देते हैं। ''जमतील सगळ्या गोष्टी जमतील. इंग्रजांनी राज्यसत्ता काबीज केली असली तरी त्यांच्यामुळेच आमचं कायिक दास्य संपलं आहे. ब्राह्मणशाहीनं आमची मनं गुलाम करून ठेवली आहेत. त्याचं काय ? आम्ही शूद्र-अतिशूद्र कसे. याचा विचार करणार आहात की नाही ? इंग्रज जेवढे परके आहेत, तेवढेच आमच्यावर मानसिक आणि शारीरिक गुलामगिरी लढणारे आर्यभट्ही परकेच आहेत. आमच्या शूर पूर्वजांना जिकूंन त्यांनी हे खोट्या धर्माचं भूत आमच्या मानगुटीवर दिलं आहे. आम्हांला शिक्षणांची बंदी करुन आम्ही कधीही पुन्हा उठून उभं राहू नये, अशी कडेकोट व्यवस्था करुन ठेवली आहे. आर्यभट्टांनी केलेला हा बामणी कावा हेच आमच्या समाजाच्या दु:खाचं मूळ कारण आहे, उस्ताद कंपनी सरकार आज आहे. उद्या नाही. देशातल्या विराट समाजाला पशूसारखं वागवणारी ऐतखाऊ भटशाही हाच आजचा खरा शत्रू आहे.''[2] (आएगा, सभी बातें आ

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 20
2. वही, पृष्ठ - 64-65

जाएगी। अंग्रजों ने राजसत्ता हथिया ली फिर भी, उसके वजह से हमारा कायिक दास्यत्व समाप्त हुआ। ब्राह्मणों के हुकूम ने हमारे मन गुलाम कर दिए हैं, उस्का क्या ? हम शूद्र-अतिशूद्र कैसे, इसका विचार करेंगे या नहीं ? अंग्रेज जितने पराये हैं, उतना ही हम पर मानसिक तथा शारीरिक गुलामी करनेवाले आर्यभट भी पराए ही है। हमारे वीर पूर्वजों को जीतकर उन्होंने झूठे धर्म के भूत को हमारे सर पर बिठाया है। हमें शिक्षा से वंचित रख हमें इससे कभी उभरने की व्यवस्था नहीं की। आर्यभटों का यह ब्राह्मणी हमारे समाज का मूल दुख है। कारण है, उस्ताद कंपनी सरकार आज है, कल नहीं। देश के इस विराट समाज से पशूओं की तरह व्यवहार करनेवाली भटों की हुकुमत ही असल में हमारा शत्रु है।) इस प्रकार फुले समाज के दीन-दीनों को अपने अधिकारों के प्रतिसचेत करते हैं।

फुले ने समाज में फैले अंधश्रद्धा का भी विरोध किया। पोथियों-पुरानों की बातें और पत्थरों की पूजा इसके वे विरोध में थे। उनका मानना था कि, हर मनुष्य अपने गुणों से श्रेष्ठ है। जाति या जन्म से नहीं। इसके लिए हर व्यक्ति को आत्मपरीक्षण करने की आवश्यकता है। ''प्रत्येक माणूस गुणांनी श्रेष्ठ ठरतो. जातीनं किंवा जन्मानं नव्हे. महार सदाचारी असला तरी नीच आणि ब्राह्मण दुराचारी असला तरी श्रेष्ठ, हा कुठला न्याय आहे ? याबाबत आपणही थोडं आत्मपरीक्षण करण्याची गरज आहे. ब्राह्मणांच्या पायाचं पाणी तीर्थ म्हणून पिण्यात धन्यता मानू नका. त्याऐवजी स्थिति सुधारण्यासाठी प्रयत्न करा. त्यातंच खरं मनुष्यपण आहे.''[1] (''हर एक मनुष्य अपने गुणों से श्रेष्ठ ठहराता है। जाति या जन्म से नहीं। शूद्र सदाचारी है फिर भी नीच और ब्राह्मण दूराचारी होकर भी श्रेष्ठ यह कहाँ का न्याय है ? इसके लिए सभीं को आत्मपरीक्षण करने की जरूरत हैं। ब्राह्मणों के पाँव का पानी अमृत कहकर पीने में कुछ धन्यता नहीं, इसके बदले में अपनी स्थिति में सूधार करने की आवश्यकता है। इसी में सच्चा मनुष्यत्व हैं।) बच्चो को सिर्फ शिक्षित करना अपना कर्तव्य नहीं मानते। तो उसें अपने अधिकारों के प्रति सचेत बनाना आवश्यक मानते हैं।

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 195

इस प्रकार 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर और 'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले दोनों ऐसे नायक हैं जिन्होंने अपने अधिकार की लड़ाई लड़ी और समाज के संकुचित वृत्ति का विरोध कर सदियों से निद्रिस्त समाज को सचेत किया।

4.6 दोनों स्थापित व्यवस्था में परिवर्तन चाहनेवाले रूप में :

'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर जिन्होंने निम्न जांति का होने के कारण समाज की चोटें सहन कर ली। यही संघर्ष रहा उनका लेकिन इसे सहते सहते समाज के कुरीतिओं, कुप्रथाओं, पर भी प्रहार करते रहें। इस में खुद टूटे लेकिन समाज के दर्प और खोखले अहंकार को भी तोड़ा।

अपने गाँव की 'बबुनी' का अनमोल विवाह याद कर भिखारी तिलमिला उठते है। न जाने ऐसी कितनी बबुनी बिहार, यु.पी. में बेंची जाती ? "एक बबुनी, फिर दूसरी, फिर तीसरी। .. अनन्त क्रम है बेंची गई बेटियों का। मन में धाव-सी पक रही हैं पीर, मध और बथ रही है पीर। भोंकार मारकर रोने का मन करता है, ताकि मवाद बाहर आ जाए और जी कुछ हल्का हो।"[1]

इसी दर्द से आगे निर्माण हुआ 'बेटी वियोग' सामाजिक स्थापित व्यवस्था के लिए एक करारा चोट थी। इस व्यवस्था की मांग इस प्रदर्शन में की थी। जिसका परिणाम होता गया और क्रांति की आग फैल गई। बेटियाँ ऐसे ब्याह से भाग जाती या फिर आत्महत्या कर लेती। यह बदलाव समाज में आता गया। फिर 'नौतनवां गांव में ही लोगों' ने ऐसे विवाह की बारात मंडप से भगा दी। कई जगह से बेटियाँ ने ऐसे विवाह से इन्कार कर भागना शुरू किया।

भिखारी नाई थे। नाई एक ऐसी जाति जिसे लोगों के घर में बच्चे के जन्म से लेकर किसी के मौत तक हजारों काम होते हैं। किसी के मौत पर उस लाश की अग्निसंस्कार देने तक का काम देखना पडता हैं और यह सब कर कर उसे नेग मिलता है सव्वा आना। वही दूसरी तरफ शोक में डूबे परिवार को गरूड़ पुराण सुनाने वाले ब्राह्मण को दान में मिलेंगा वस्त्र, पैसा, सोना, चाँदी, पुष्प, दीप, पंचमेवा क्योंकि जो भी तुम दान

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 102

करोंगे वह पितरों को मिलेंगा ऐसी अंधश्रद्धा और अगर यह दान नहीं करोंगे तो जजमान के गले में हमेशा फांस पडी रहती है कि, मरनेवाले को सद्गति नहीं मिली और लोग कुछ भी कर इस तरह ब्राह्मणों को दान करते हैं लेकिन वहीं दूसरी ओर नाई को क्या मिलेंगा ? तो मूर्दे का 'कफन' और इसी कमन से नाई के मेहरारू की कुर्ती बनेंगी। यह थी उस समय की स्थापित व्यवस्था। जिसकें परिवर्तन की चाह भिखारी ठाकुर करते हैं। इसी परिवर्तन की आकांक्षा से उनका 'नाई बहार' काव्य आ जाता है। जिसमें उन्होंने शूद्र, वाणी सेलेकर क्षत्रिय, ब्राह्मण सभीं को एक ही पांत में खड़ा करने की कोशिश की है। समाज में सभी लोगों को एक ही दर्जा मिले ऐसी उनकी कामना थी।

भिखारी जब खुद का वंजूद अंधेरें में बुलता देखते हैं तो उस रात के अंधेरे में उसका काला बुरादा झरकर उसके मकरेपन को गाढ़ा कर रहता है। भिखारी एकदम अकेले थे लेकिन लाचार रंचमात्र भी नहीं। यही बात थी। पूर्वापार से चली आई परंपरा मे यह समाज एक नाई जो पंडितों की-सी बातें कर रहा हैं उसका अधिकार सह नहीं पाता। लेकिन इस विरोध का डट्कर सामना भिखारी ठाकुर ने किया।

इस प्रकार समाज की स्थापित व्यवस्था के परिवर्तन की चाह भिखारी ठाकुर ने की। न सिर्फ की तो इस व्यवस्था के लिए करारा चोट भी दी।

आधुनिक भारत में सामाजिक क्रांतिकारक के रूप में हम महात्मा फुले को देखते हैं। इसी लिए उन्होंने सौ वर्ष बाद का आधुनिक भारत देखा था। उनका मानना था कि, बच्चों को सिर्फ पढ़ा-लिखाकर शिक्षित बनाना हमारा लक्ष्य नहीं तो उन्हें वैचारिक दृष्टि से सबल बनाना भी उतना ही आवश्यक है।

परंपरागत रुढ़ियों, सामाजिक व्यवस्था के स्थापित इन मूल्यों के प्रति फुले के मन में एक घृणा का भाव था क्योंकि हर यह स्थापित नियम निम्न वर्ग के शोषण के लिए ही बनाए गए है ऐसा उनका मानना था। इन परंपरागत रूढ़ियों के विरोध में थे फुले।

पिता के मृत्यु के बाद परंपरागत रूढ़ि के अनुसार पिण्डदान करना था लेकिन इस परंपरा का उन्होंने विरोध किया जिसमें ब्राह्मणों को भोज तथा दक्षिणा दी

जाती। उन्होंने इस पिण्डदान में दीन-हीन, अपाहिज लोगों को अन्नदान कर दिया। इस प्रकार सामाजिक स्थापित व्यवस्था को परिवर्तन को उन्होंने स्वयं कृति के द्वारा अपनाया। आज हम देखते हैं, यह काम कितना कठिन है लेकिन यह काम उन्होंने तत्कालीन समय में उस रूढ़िवादी समाज में कर दिखाया था।

तत्कालीन समय में विधवाओं की समाज में दुर्गति हुआ करती थी। समाज ऐसे स्त्रियों के प्रति हमेशा दुर्व्यहार करता था। उनके पुनर्विवाह को विरोध करता। ऐसे में फुले ने विधवा पुनर्विवाह का प्रोत्साहन दिया आरै न सिर्फ प्रोत्साहन दिया तो ऐसे विवाह संपन्न भी किए।

ईश्वर और भक्त में किसी पुरोहित की कोई आवश्यकता नहीं होती ऐसा उनका मानना था और इसी कारण भक्त और ईश्वर के बीच मध्यस्थ वाले पुरोहित को उन्होंने नकारा था। ईश्वर को अगर सच्चे मनसे स्मरण किया जाए तो वह अपने अशिष देता है ऐसा उनका मानना था।

समाज में फैली 'देवदासी' की कुप्रथा के विरोध में भी फुले ने आवाज उठाई। ऐसे देवदासी विवाह का विरोध कर एक विवाह रुकवा भी दिया। ऐसी प्रथा के कारण पंडित लोग उन लड़कियाँ का उपभोग लेते और फिर समाज में ऐसे लड़कियों को वेश्या की तरह जीवन बिताना पड़ता। यह धर्म और ईश्वर के नाम पर समाज के ठेकेदारों ने बनाई हुई बहुत धिनौनी प्रथा थी। ऐसी स्थापित प्रथा के परिवर्तन के साथ उसके समाप्ति के लिए भी संभव प्रयास फुले ने किए।

इस प्रकार सदियों से चली आई ऐसी अनेक सामाजिक व्यवस्थाएँ थी। समाज में उच्च वर्ग जो निम्न वर्ग पर अन्याय-अत्याचार करता। जो अपने सुविधा के अनुसार नई-नई रूढ़ियाँ को ढाल देता और अशिक्षित आम जनता उसे स्वीकार लेती और उन झूठे मूल्यों के पीछे दौडती रहती। ऐसे समाज को सिर्फ 'शिक्षा' से ही सुधारना संभव है यह बात उन्होंने जानी थी। ऐसे में अगर एक स्त्री शिक्षित हो जाती है तो वह परिवार, फिर

समाज और देश भी शिक्षित होगा ऐसा फुले का मानना था। ऐसे में स्त्री शिक्षा का प्रथम प्रयास उन्होंने किया। वह भी ऐसे समाज में जहाँ 'स्त्री' को कोई स्थान नहीं था। वह शूद्र थी।

अत: कहना सही होगा कि फुले ने सामाजिक स्थापित व्यवस्था के परिवर्तन की मांग की। उसके लिए कार्य भी किया।

4.7 दोनों कवि के रूप में अंकित :

'सूत्रधार' का भिखारी ठाकुर याने एक ऐसा व्यक्ति जो नटसम्राट था, व्यास था, अपनी जनता का दुलारा था, भोजपुरी का शेक्सपीयर था। रामानन्द सिंह के साथ भिखारी 'रामलीला' की पटकथा लिखने लगे। तब वे दस बार उठते-बैठते। कवि की पीड़ा याने क्या होती है इसका अनुभव भिखारी करते है यह पीड़ा गाभिन गाय-सी थी। ''गाभिन गाय से काम पीड़ा थोडे ही हो रही है ? अब इन्हें कौन बताए?''[1] और फिर इस तरह उभरता जाता है एक कवि।

रामसेवक ठाकुर ने भिखारी ठाकुर को मात्राओं की गिनती करना सिखाया। इस प्रकार भिखारी कविता लिखने लगे। भिखारी अपने काव्य और नाच के द्वारा संस्कृति की पहचान करना चाहते थे। उनका मत था कि, अपनी मरजाद (मर्यादा) भी न टूटे और संस्कृति भी बनी रहें। ज्ञान के इस स्वर्णमहल में भिखारी ठाकुर ने नंगे पाँव, घुटनों तक धोती लपेट और पगड़ी पहनकर घुसने का दुस्साहस किया था। उन्होंने ज्ञान के एकाधिकार पर गहरी चोट की थी और उसे जनता के बींच ले आये थे। इस काम के लिए जिस ताकतवर दिल की जरूरत थी वह भिखारी के पास थी। अपने इस समाज से लड़ने के लिए उनके पास था हर पल सक्रिय और चौकन्ना रहनेवाला दिमाग भी और इसी से प्रस्तुत हुआ उनका काव्य।

उनका 'बिदेसिया' याने 'बिरहा बहार' जिसमें परदेस गए पति की याद में तड़पती पत्नी का विलाप था। परदेस में पति धन कमाने जाता है और वहींपर किसी वेश्या में फँस जाता है। वियोग वर्णन, रस-रंग का वर्णन आया है और अंत में बिछुडे हुए फिर मिल जाते है। इस बिदेसिया की कल्पना भिखारी को गांव के बिन्दबहू से मिली जिसका

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 52

पति परदेस में था। उसका दुःख भिखारी ने देखा। जिसकी प्रेरणा से ही 'बिदेसिया' की रचना की।

हर गाँव, बिहार, यु.पी. आदि में बेटियाँ बेंची जाती। उनके इस अनमेल विवाह पर उन्होंने 'बेटी वियोग' की रचना की। बेटी का विलाप झरता गया कागज, पर ...

''रोपेया गिनाइ लिहल-अ, पगहा धराइ दिहल-अ चेरिया के छेरिया बनवल-अ हो बाबू जी !

गिरजा कुमार कर-अ दुखवा हमार पार-अ ढर-ढर ढरकत बा लोर मोर हो बाबू जी।''[1] कवि होने के साथ भिखारी लोगों के हृदयस्पंदन को जानते थे। समाज की व्यथा, पीड़ा, कसक को उन्होंने काव्य का रूप दे दिया। यह व्यथा स्वयं भिखारी ने भोगी थी। निम्न जाति में पैदा होने का दंश उन्हें जीवनभर सलता रहा। भिखारी को बचपन से 'रेकार' और अपमान सूचक विशेषण सुनने की आदत थी। इसी मर्म से आगे 'नाई बहार' प्रस्तुत हुआ।

''साल तेहर सौ चालीस आही (फसलीसंवत)
नाऊ वंश कलपत जग माही
आश्विन शुक्ल अष्ट उजियारी
सुक दिवस मह कहत पुकारी
एह गरीब के मुँह बा-बन्द
कइलन कौन कसूर सुख कन्द''

जब यह कल्पता हुआ बन्द मुँह कागज पर खुला तो खुलता ही चला गया। गलने लगी पीर, बूँद-बूँद टपकने लगा तेजाब ....!''[2]

इस तरह समाज का यथार्थ अंकन काव्य के माध्यम से किया। काव्य था रसरंग के साथ दर्द, पीड़ा, यथार्थ भी। कभी काव्य में दयनीयता भी तो कभी वीरता।

''अधनारा के रूखर धार,
दूसर जात केहु पावै न पार।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 102
2. वही, पृष्ठ - 161

छूरा छूत खेदत पल माही
नरक नहरनी सखत नाहीं।
कइँची कवच नाई दलवीरा
पातक समर चाहत रणधीरा।''[1]

अत: निम्न जाति में पैदा होने से उनकी पीड़ा तथा व्यथा को भिखारी भली भाँति जानते थे।

भिखारी ने लोक भाषा के अमिट खजाने से बेशुमार मोती चुने थे और उसी से उपजा था उनका काव्य। जिसमें टटके बिम्ब और हृदय को स्पंदित कर देनेवाली अभिव्यक्तियाँ थीं। काव्य में भी थी सजीवता और शैली में भी। कभी काव्य में विद्रोह था तो कभी श्रृंगारी कवि का रूप था। जैसे उनका विद्रोही रूप -

''रहिमान बुरा न मानिए, जो गँवार कहि जाया।
जस घर के नदवान ते भलो, बुरो बहिजाय।
अंध न जानत दीपक की छावि
औ, बहिरों नहिं राग को जाने।
मान सरोबर का सुख के
कब हूँ नहिं काक सके अनुमाने।
पापीं महा अधमाधम हूँ
कब हूँ नहिं स्वर्ग के सुख बखाने।
तै सेहि भूरख का जग में
भकुहा, उल्लुवा बन्दुरा के समाने।''[2]

सामाजिक दर्ष के हर कुरीतिओं, कुप्रथाओं पर भिखारी ने अपनी कलम चलाई। उपन्यास में उनके इस कवि रूप को अलौकिकता तब आती है, जब 'बिजली' की कौंध के साथ पलभर के लिये राहुल सांस्कृत्यायन जी आते हैं। अनोखी आभा से उपन्यास भर जाता है। ''भिखारी तुम मामूली कवि नहीं हो, लोक कवि हो, वाचिक

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 162
2. वही, पृष्ठ - 277

परम्परा के कवि। इस देश में ज्यादा पढ़े-लिखें लोग नही, ज्यादा धनी-मानी लोग भी नहीं, यह गरीब, गुरबों और गाँवों का देश है। यहाँ श्रुति और वाचिक, माने सुनने और बोलने वाले विद्वानों कवियों की परम्परा ही चलती रही है। वेद भी श्रुति है, गुरूओं की बानी भी ...। कबीर से बड़ा कोई कवि नहीं हुआ, वह भी वाचिक परम्परा के ही थे। वाचिक परम्परा के कवियों के लिए उसके पाठक या श्रोती नजर से दूर नहीं होते। वे जिसके लिए लिखते हैं या जिसको सुनाना-दिखाना चाहते है, वे उनके सामने और आसपास होते है, अपनी पूरी पहचान के साथ''[1] लोक कवि की पूरी पहचान थी भिखारी ठाकुर में। यथार्थ और कल्पना के अपूर्व मिश्रण से उपजे भिखारी की धजा निराली है। एक कवि सम्मेलन में बद्री सिंह बागी ने भिखारी को चुनौती देते हुये समस्यापूर्ति दी -

''के ही कारन नाम भिखारी परी ...?''
अगले कवि सम्मलेन में भिखारी का उत्तर था -
''नितही नित भंग धतूर चबावत,
अंग समूचा में खाक भरी।
डमरू तिरमूल लिए कर में
कौशल्या कहँ जाइके अल्ख करी।
दीन दयाल सदा जन-पालक
भेष भिखारी बना शिव का
तेहिं कारन नाम भिखारी परी।''[2]

इस प्रकार यह लोक कवि साक्षात शिव था जिसमें जहर और मस्ती का मिश्रण था। मान-अपमान का शिखर। पग-पगपर लांछन, तिरस्कार और घुटन के साथ ही यह उभरा था। समाज, परिवार और घर को प्रेम के डोर से बांधकर रखने की कोशिश वह करते लेकिन यह सब बिखरते जाते। भिखारी से शुरू हुई भिखारी ठाकुर की कहानी अंत में भिखारी पर ही समाप्त हुई। इनका काव्य प्रकृति, समाज, परिवार आदि का दर्पण था। हिलकोरने वाली प्राणवान भाषा का जीवंत दस्तावेज।

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 279
2. वही, पृष्ठ - 299

'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले तक समाजसुधारक होने के साथ-साथ उच्चकोटि के कवि भी थे। समाज में निम्न वर्ग पर उच्च वर्ग का हो रहा अन्याय-अत्याचार देखकर वे तिलमिला उठते थे।

समाज की यथार्थ स्थिति का अंकन फुले ने अपने पोवाडे से किया। साथ में समाज में अंधश्रद्धा पूरीतरह से भरी थी। लोग उच्च जाति के प्रति नतमस्तक थे लेकिन उच्च वर्ग निम्न वर्ग पर हर एक मार्ग से अन्याय और अत्याचार कर रहा था। जातिभेद, कुप्रथाओं, रुढ़ियों, आडंबरों से समाज दबा था फुले ने अपने अखंडों की रचना की जिसमें सबसे बड़ा धर्म मानवता है यह बात बतायी।

"सत्यवीण नाही धर्म तो रोकडा। ज्ञनांशी वाकडा। मतभेद॥
सत्य सोडूं जातां वादांमध्ये पडे। बुद्धिस वाकडे। जन्मभर
सत्य तोच धर्म करावा कायम। मानवा आराम। सर्व ठायीं।
मानवांचा धर्म सत्य हीच नीती। बाकीची कुनीती। जोती म्हणे॥"[1]

(जोति कहते हैं - सत्य के बिना दूसरा कोई धर्म नहीं है। सत्य अगर छोड दिया जाए तो पूरे जीवन भर बुद्धि से परे किसी विवाद में फँस जाओगे। सत्य यही सच्चा धर्म है जो मनुष्य को हर समय आराम पहुँचाता है। सत्य यही मनुष्य का धर्म है बाकी जो है वह नीति के खिलाफ है।)

ईश्वर और भक्त के बींच में किसी पुरोहित की कोई जरूरत नहीं होती यह फुले का मानना था। ईश्वर को अगर सच्चे मन से स्मरण किया तो भी वह अपने आशिष देता है और इसके लिए हर व्यक्ति को अपने बर्ताव में सुधार करने की आवश्यकता है।

"हिंदू धर्माचे ब्राह्मण वकील। लुटिले सकळ। जन त्यानें।
धर्म मिषे लोक नाडिले वाकिले। स्वार्थ साधले। आपले ते॥
न लगे वकील देव दरबारी। भक्ती एक खरी। जोती म्हणे॥"[2]

(जोति कहते हैं - हिंदू धर्म के ब्राह्मण वकील हैं जिन्होंने पूरे जन को लूट लिया है। धर्म के नाम पर लोगों को फँसाकर अपना स्वार्थ वे पूरा करते हैं। ईश्वर की भक्ति के लिए फिर ऐसे वकील लोगों की कोई जरूरत नहीं।)

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 203
2. वही, पृष्ठ - 206

समाज के पिछड़ेपन में उसकी अधोगती के लिए महात्मा जोतीराव फुले 'अविद्या' को दोषी ठहराते हैं। जब तक हमारा समाज शिक्षित नहीं होगा तब तक उसे अपने अधिकार अपने कर्तव्य आदि की फिकर नहीं होगी और सदियों से दबा, यह समाज अपनी उन्नति नहीं कर सकेंगा क्योंकि उच्चवर्ग के तथाकथित शिक्षित लोग उन पर सदियों से राज करते आ रहें है। उन्हें भ्रामक रूढ़ियों, अंधविश्वासों में फँसाकर उनका शोषण कर रहे है। उन्हें इससे बाहर निकालने का एक ही मार्ग वे बताते हैं 'विद्या'।

''विद्येविना मती गेली। मती विना नीती गेली।
नीतिविना गती गेली। गती विना वित्त गेले।
वित्ताविना शूद्र खचले। इतके अनर्थ एका अविद्येने केले।''[1]

(शिक्षा के बगैर मति गयी। मति के बगैर नीति। नीति के बिना गति गयी। गति के बिना वित्त। वित्त के बिना शूद्र घबराये। इतने सभी अनर्थ सिर्फ एक अशिक्षा के कारण।)

समाज में फैली जातिभेद की अहंमान्यता जोतिराव फुले को मान्य नहीं थी। उन्होंने जातिभेद से दूर एक ऐसे समाज का सपना देखा था जहाँ सभी मिल-जूल कर रह रहे हो।

''ख्रिस्त, महंमद, मांग ब्राह्मणासीं। धरावे पोटासी। बंधुपरी॥
मानव भावंडे सर्व एकस हा। त्याजमध्ये आहा। तुम्ही सर्व॥''[2]

(ख्रिस्ति, महंमद, मातंग, ब्राह्मण सभी को भाइयों की तरह एक साथ रखना है। मनुष्य सभी भाई-भाई हैं, उन्हीं में से हम-तुम सभी जन है।)

इस प्रकार से फुले का कवि रूप हैं। जिसने समाज के स्पंदन को शब्दबद्ध किया। उसकी पीड़ा को जाना, समझा और उसे ही कागज पर उतार दिया। पूरे समाज को एकसूत्र में बांधने की आकांक्षा की।

''सर्वांचा निर्मिक। आहे एक धनी। त्याचे भय मनी। धरा सर्व॥
न्यायाने वस्तुंचा। उपयोग घ्यावा। आनंद करावा। भांडु नये॥
धर्मवाज्य भेदा मानावा नसावे। सर्व सुखी व्हावे। भिक्षा मी मांगतो॥
आर्यास सांगतो। जोती म्हणे॥''[3]

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 330
2. वही, पृष्ठ - 453
3. वही, पृष्ठ - 454

(जोति कहते हैं - सभी लोगों का निर्माता एक ही है जिसका भय सभी के मन में होना चाहिए। न्याय के सहारे सभी वस्तुओं का उपभोग लेना चाहिए। इसी में आनंद मान कर किसी से झगड़ा नहीं करना चाहिए। धर्म के नाम पर किसी में भेदभाव नहीं होना चाहिए। सभी को सुख-शांति मिले यही कामना सभी आर्यों से करते हैं।)

इस प्रकार विवेच्य उपन्यास के दोनों चरित्रों को हम कवि के रूप मे देखते हैं।

4.8 दोनों क्रांतिकारी रूप में प्रस्तुत :

'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर उपेक्षा के अपने नारकीय दलदल से ऊपर उठकर इस उपेक्षित कलाकार ने गीत-संगीत, नृत्य और अभिनय के क्षेत्र में कहीं पर तो विशिष्ट से विशिष्ट और विरल से विरल प्रयोग किए। एक लड़ाई घर में भी, खुद से और परिजनों से और दूसरी लड़ाई वृहत्तर देश-जहान से। दोनों मार्चे पर भिखारीने बहुत कमाल कर दिया। भिखारी का जीवन याने 'संघर्ष' था और इस संघर्ष में बाघ की दहाड भी थी और बिलाय की म्याऊं भी।

"नाम भिखारी, काम भिखारी, रूप भिखारी मोर ठाट पलान, मकान भिखारी, भइल चहूँ दिशि सोर।"[1] भिखारी की इन रचनाओं का रहस्य इस दहा और म्याऊं के बींच ही छुपा था। भिखारी के पूरे जीवन को जब हम अनावृत्त करने की कोशिश करते है तो हमें दिखाई देता है कि दूरतक फैला अंधेरा और उसी में जलती एक मशाल। यह मशाल याने थी उनकी क्रांति। जलना और रौशन होना ही नियति थी भिखारी की। निम्नजांति में पैदा होने से लांछन और अपमान की आग में भिखारी जीवन भर जले। भिखारी से शुरू हुआ उनका जीवन भिखारी पर ही खत्म हुआ। जातिभेद की अहंमन्यता उन्हें स्वीकार नहीं थी। लोगों का बर्ताव निम्न वर्ग के लिए उपेक्षित ही था। ऐसे में स्थल-स्थल लांछना और अपमान ही बंधा था उनके भाग्य में। तत्कालीन समाज में जहाँ एक तरफ विद्रोह के अवसाद और ब्रिटिश शासन था तो दूसरी ओर स्वाधीनता आंदोलन, सामाजिक नवजागरण तो पराभव, नवोन्मेष संक्रमण आदि की स्थिति। ऐसे में समाज में जहाँ लोग एक-दूसरे के प्रति ही घृणा करते थे, सामाजिक विषमता की यह दीवारें बहुत

---

1. संजीव : सूत्रधार, पृष्ठ - 170

ऊँची थी। ऐसे में समाज के निम्नजाति में स्त्री की स्थिति उतनी ही दयनीय और करूणा पूर्ण थी। ऐसे में आये दिन बाढ़-अकाल की स्थिति रहती और करों के बढ़ते बोझ तले यहाँ का किसान दब जाता तो उसके सामने अपने लड़कियों की शादी की चिंता खड़ी हो जाती और इस सबसे जब उपाय खोजता है तो सामने एक ही राह नजर आती है और वो थी अनमेल विवाह की। इसी अनमेल विवाह की त्रासदी 'बेटीवियोग' में चित्रित की। परिणाम यह हुआ कि क्रांति की आग फैल गई। नौतनवां गाँव में तो गाँव के लोगों ही प्रौढ़ वर की मय बारात भगा दिया।

इस प्रकार समाज के इन जर्जरित पुरातन रूढ़ियों के प्रति एक आक्रोश था भिखारी के मन में। उसें विरोध कर इसके लिए उन्होंने अपने साहित्य का मार्ग चुना। अपने नाच प्रदर्शन और साहित्य के द्वारा इन मूल्यों का कड़ा विरोध किया। यही पर उनका क्रांतिकारी रूप दृष्टिगोचर होता है।

'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले का क्रांतिकारी रूप भी उपन्यास में स्थल-स्थल पर दिखाई देता है। परंपरागत समाज में पीढ़ियों से चले आये संकुचित विचारधारा, दीन-दुखियों पर होते आ रहे अत्याचार, सामाजिक विषमता, शूद्रों की करूणमय स्थिति, किसानों की दुर्दशा आदि परिवेश से जूझते हुए इस व्यवस्था के पूरे परिवर्तन की आकांक्षा उन्होंने की। क्रांति के बीज उन्हें समाज के ठोकरों से प्राप्त हुए।

अपने मित्र के शादी के बारात में हुए अपमान से उनका विद्रोह उफन पडता है। वे कहते हैं, ''त्यांचा आणि माझा धर्म एकच आहे. ते हिंदू आहेत, तसा मी ही हिंदू आहे. मग ती हीन कसा ? मी ही एक माणूसच आहे ना ? कशाच्या आधारावर ते मला हीन समजतात ? कशासाठी मी हा जुलूम सहन करायचा ?''[1] (उनका और मेरा धर्म एक ही है। वे हिंदू हैं उसी प्रकार मैं भी हिंदू हूँ। फिर मैं हीन कैसे ? मैं भी इन्सान ही हूँ ना? किस आधार पर वे मुझे हीन समझते है ? किसलिए मैं यह जुल्म सह लूं ?)

क्रांति के बीज फुले के व्यक्तित्व में पहले से थे। समाज के उच्चवर्ग के अन्याय पूर्ण कर्म को देखकर फुले अग्नि की तरह जल उठते थे। उच्चवर्ग सदियों से

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 20

निम्नवर्ग पर अन्याय करता आ रहा था। ऐसे इस कुचक्र से समाज को बाहर निकालने की आकांक्षा फुले ने की।

आधुनिक भारत का सपना फुले ने देखा था। बच्चों को सिर्फ शिक्षा देना ही याने उन्हें सुशिक्षित करना नहीं है तो उन्हें वैचारिक दृष्टि से भी सबल बनाना अत्यंत आवश्यक हैं यह बात फुले मानते थे। फुले का मानना था कि, मानवता की दृष्टि से कनिष्ट समाज के लोगों को समता की व्यक्ति स्वतंत्रता की उनके हकों की बात बतानी होंगी। इसके लिए उन्हें संघर्ष करना होंगा। वे कहते हैं - " 'बेवनाव' या हिंदू वर्णाश्रमाच्या पोटातच आहे. त्यावरच या समाजाची रचना झाली आहे. आणि राजकीय हेतूचं हे भूत आजच कुठून उभं राहिलं ? समाजाला शिकवून शहाणं केलं पाहिजे. हाच आपला निश्चय ठरला होता, हे तुम्ही विसरलात का ? कित्येक सामाजिक प्रश्न आज भेडसावत आहेत. विधवांच्या आयुष्यांची परवड, शेतकऱ्यांची पिळवणूक पाहवत नाही. त्यांच्या या स्थितीला हिंदू धर्मातील दूष्ट रूढी हेच एकमेव कारण असताना आपण काही करणार आहोत, की नाही ? का अशी खुसपटं काढून त्याकडं पाठ फिरवणार आहोत ? मला गाडलेली मढी उकरून काढायची हौस नाही. सत्य सांगून लोकांना शहाणं करायचं आहे. ठीक आहे. माझे विचार तुम्हांला पटत नसतील, तर मी संस्थेतून निवृत्त होतो. तुम्ही तुमच्या पद्धतीनं शाळा चालवा. परंतु आपल्या गोरगरीब शूद्र अतिशूद्र बांधवांना शिक्षणापासून वंचित ठेवू नका. एवढीच माझी नम्र विनंती आहे."[1] (बेइमानी इस हिंदू वर्णाश्रम के पेट में ही है। उसी पर ही इस समज की रचना हुई है और राजकीय हेतु का यह भूत आजही कहाँ से खड़ा हो गया ? समाज को पढ़ाकर शिक्षित करना हैं। यही अपना निश्चय हुआ था। विधवाओं के जीवन की दुर्दशा, किसानों पर हो रहा अत्याचार अब देखा नहीं जाता। उनके इस स्थिति के लिए हिंदू धर्म की दुष्ट रूढ़ियों के ही कारण है यह जानकर भी हम कुछ करेंगे या नहीं ? या फिर आपस में ही इस प्रकार से झगडते रहेंगे। मुझे गये मुर्दे निकालने में आनंद नहीं हैं। सत्य बताकर लोगों को सचेत करना है। ठीक है। मेरे विचार अगर आपको अच्छे नहीं लगते तो मैं इस संस्था से जाता हूँ। आप अपनी रीति से स्कूल चलाएं लेकिन अपने गरीब शूद्र अतिशूद्र बंधुओं को शिक्षा से वंचित मत रखिए। एक भी स्कूल बंद होने न पाए इतनी ही मेरी आपसे बिनती है।)

---

1. डॉ. रवींद्र ठाकुर : महात्मा, पृष्ठ - 112

इस प्रकार महात्मा फुले का क्रांतिकारी रूप हमें उपन्यास में दिखाई देता है। इसी रूप को हम उनके साहित्य में भी देखते हैं।

4.2 समन्वित तुलनात्मक मूल्यांकन :

प्रस्तुत विषय के अंतर्गत हमने संजीव के 'सूत्रधार' तथा डॉ. रवींद्र ठाकुर के 'महात्मा' इन दो उपन्यासों के चरित्र चित्रण की अलग-अलग प्रवृत्तियों को देखने से स्पष्ट होता है कि दोनों उपन्यासों के चित्रण में अधिक यथार्थता, स्पष्टता दिखाई देती है।

उपन्यास के प्रमुख पात्र ऐतिहासिक हैं साथ में चित्रित वातावरण भी। स्थल-काल की दृष्टि से भी इसमें सत्यता है। उपन्यास में वर्णित वातावरण 19 वीं सदीं का होने के कारण स्थल एवं काल का उचित समन्वय यहाँ दिखाई देता है। दोनों नायकों के चरित्र की प्रमुख प्रवृत्तियाँ यहाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

4.2.1 साम्य :

1. 'सूत्रधार' तथा 'महात्मा' दोनों उपन्यासों में ऐतिहासिकता का निर्वाह हुआ है। उपन्यास के प्रमुख चरित्र ऐतिहासिक हैं।
2. स्थल-काल के वर्णन में यथार्थता दिखाई देती है। अकाल, बाढ़, भूकंप समाज व्यवस्था आदि का वर्णन स्थल-काल अनुरूप हुआ है।
3. 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर एवं 'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुलें दोनों का 'महात्मा' का रूप दृष्टिगोचर होता है।
4. पीढ़ियों से निद्रिस्त समाज को अधिकारों के बारे में सचेत करने का कार्य दोनों ने किया।
5. स्थापित व्यवस्था के परिवर्तन की चाह दोनों नायकों ने की है।

4.2.2 वैषम्य :

1. 'सूत्रधार' में हमें 19 वीं सदीं के अंतिम दो दशकों से लेकर 20 वीं सदीं के सातवें दशक का वर्णन है तो 'महात्मा' में 19 वीं सदीं का वर्णन आया है।
2. 'सूत्रधार' में स्थल काल का वर्णन अधिक है तो 'महात्मा' में कम है।

निष्कर्ष :

निष्कर्षत: प्रस्तुत विषय के अंतर्गत हमने दो अलग-अलग चरित्रों के चित्रण की प्रवृत्तियाँ का तुलनात्मक मूल्यांकन किया है। चरित्र चित्रण की प्रवृत्तियाँ में ऐतिहासिकता का निर्वाह हुआ है। 'सूत्रधार' में हमें 19 वीं सदीं के अंतिम दो दशकों से लेकर 20 वीं शतीं के सातवें दशक तक का वर्णन मिलता है। उपन्यास में स्वाधीनता आंदोलन, अंग्रजों का शासन, मनुष्य की अन्याय अत्याचार से टक्कर लेने की कोशिश, गली-सड़ी रुढ़ियों का किया विरोध, नाना द्वंद्वभेदों, परंपराओं, संस्कारों, वेशभूषा-केशभूषा से लेकर खान-पान पद्धतियों विवाह, जन्मविधि के संस्कारों का अंकन हुआ है। 'महात्मा' में भी ढोनेवाला उच्चभ्रू वर्ग, निम्नवर्ग की दयनीयता, सामाजिक जीवन का यथार्थ आदि का अंकन ऐतिहासिकता के अनुरूप हुआ है।

'सूत्रधार' तथा 'महात्मा' इन दोनों रचनाओं में हमें स्थल-काल का निर्वाह देखने को मिलता है। उपन्यासकारों ने देशकाल में तत्कालीन समय के अनुरूप सामाजिक वातावरण, रूढि-परंपराओं, रीति रिवाजों का वर्णन किया हैं। उपन्यास में समय के अनुरूप अकाल, बाढ़, भूकंप समाजव्यवस्था, शासनपद्धति, लोगों की मानसिकता आदि का वर्णन स्थल-काल अनुरूप हुआ है।

अपने स्वाभाविक, निश्छल, व्यावहारिक तथा विश्वास मय रूप में जन के साथ विश्व को भी जागृत करने का कार्य इन दो चरित्रों ने किया हैं, जिसमें 'सूत्रधार' के भिखारी ठाकुर तथा 'महात्मा' के महात्मा जोतिराव फुले मुख्य हैं। चरित्र की प्रवृत्तियाँ में दोनों मुख्य चरित्रों का विचारवंत का रूप यहाँ दृष्टिगोचर होता है। साथ में दोनों नायक अधिकार की लड़ाई लडनेवाले थे। समाज के संकुचित वृत्ति के विरोध में अपनी आवाज और कलम उन्होंने चलाई। पीढ़ियों से निद्रिस्त समाज को उसके अधिकारों के बारे में सचेत किया।

दोनों नायक तत्कालीन समाज में व्याप्त असंख्य रूढ़ियों, दुष्ट प्रथाओं, जर्जर धर्मतत्वों को नकार देते हैं। समाज में स्थापित इस व्यवस्था का तीव्र विरोध करते हैं

और इस सबसे साथ आधुनिक विचारों को अपनाते भी है। एक स्वस्थ, आदर्श एकता से बंधे समाज का स्वप्न दोनों नायक देखते हैं। चरित्र की प्रवृत्तियों में दोनों नायकों की क्रांतिकारी रूप यहाँ दृष्टिगोचर होता है।

सूत्रधार में 19 वीं सदीं के अंतिम दो-दशकों से लेकर 20 वीं सदीं के सातवें दशक वर्णन है तो 'महात्मा' में 19 वीं सदीं का वर्णन आया है। 'सूत्रधार' स्थलकाल का वर्णन अधिक हैं तो 'महात्मा' में कम है।

* * * *